भजन से लाभ

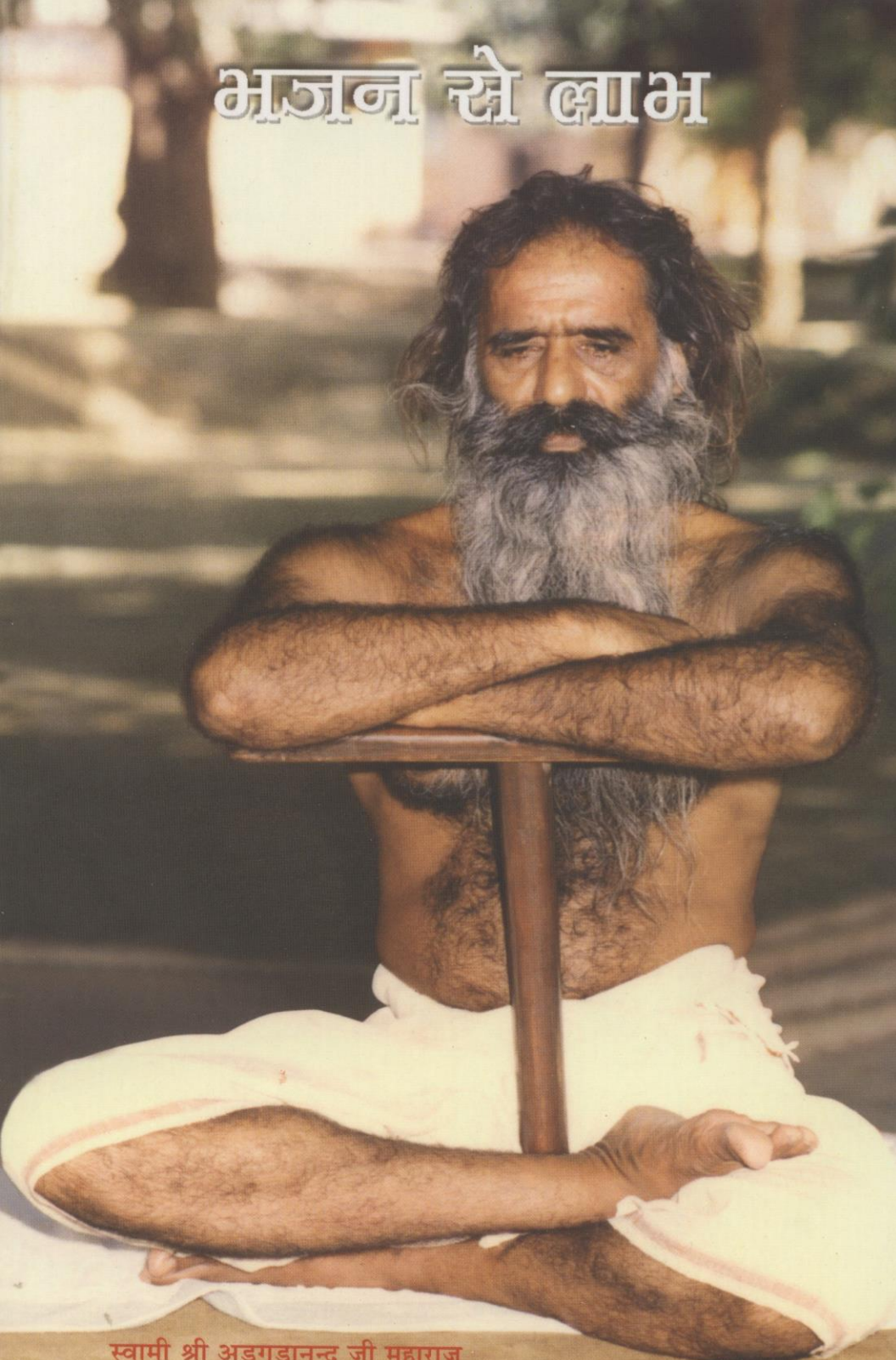

स्वामी श्री अड़गड़ानन्द जी महाराज

।। ॐ नमः सद्गुरुदेवाय ।।

नवयुवकों की जिज्ञासाएँ और भजन से लाभ

(प्रश्नोत्तरी)

लेखक :

परमपूज्य श्रीपरमहंसजी का कृपा-प्रसाद

स्वामी श्री अड़गड़ानन्दजी

श्री परमहंस आश्रम शक्तेषगढ़

ग्राम-पत्रालय - शक्तेषगढ़, जिला-मीरजापुर, उत्तर प्रदेश, भारत

प्रकाशक :

श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्दजी आश्रम ट्रस्ट

न्यू अपोलो एस्टेट, गाला नं 5, मोगरा लेन (रेलवे सबवे के पास)

अंधेरी (पूर्व), मुम्बई - 400069

अनन्तश्री विभूषित,

योगिराज, युग पितामह

परमपूज्य श्री स्वामी परमानन्द जी

श्री परमहंस आश्रम अनुसुइया (चित्रकूट)

के परम पावन चरणों में सादर समर्पित

अन्तःप्रेरणा

गुरु-वन्दना

।। ॐ श्री सद्गुरुदेव भगवान् की जय ।।

जय सद्गुरुदेवं, परमानन्दं, अमर शरीरं अविकारी।
निर्गुण निर्मूलं, धरि स्थूलं, काटन शूलं भवभारी।।

सूरत निज सोहं, कलिमल खोहं, जनमन मोहन छविभारी।
अमरापुर वासी, सब सुखराशी, सदा एकरस निर्विकारी।।

अनुभव गम्भीरा, मति के धीरा, अलख फकीरा अवतारी।
योगी अद्वैष्टा, त्रिकाल द्रष्टा, केवल पद आनन्दकारी।।

चित्रकूटहिं आयो, अद्वैत लखायो, अनुसुइया आसन मारी।
श्री परमहंस स्वामी, अन्तर्यामी, हैं बड़नामी संसारी।।

हंसन हितकारी, जग पगुधारी, गर्व प्रहारी उपकारी।
सत्-पंथ चलायो, भरम मिटायो, रूप लखायो करतारी।।

यह शिष्य है तेरो, करत निहोरो, मोपर हेरो प्रणधारी।
जय सद्गुरु.....भारी।।

।। ॐ ।।

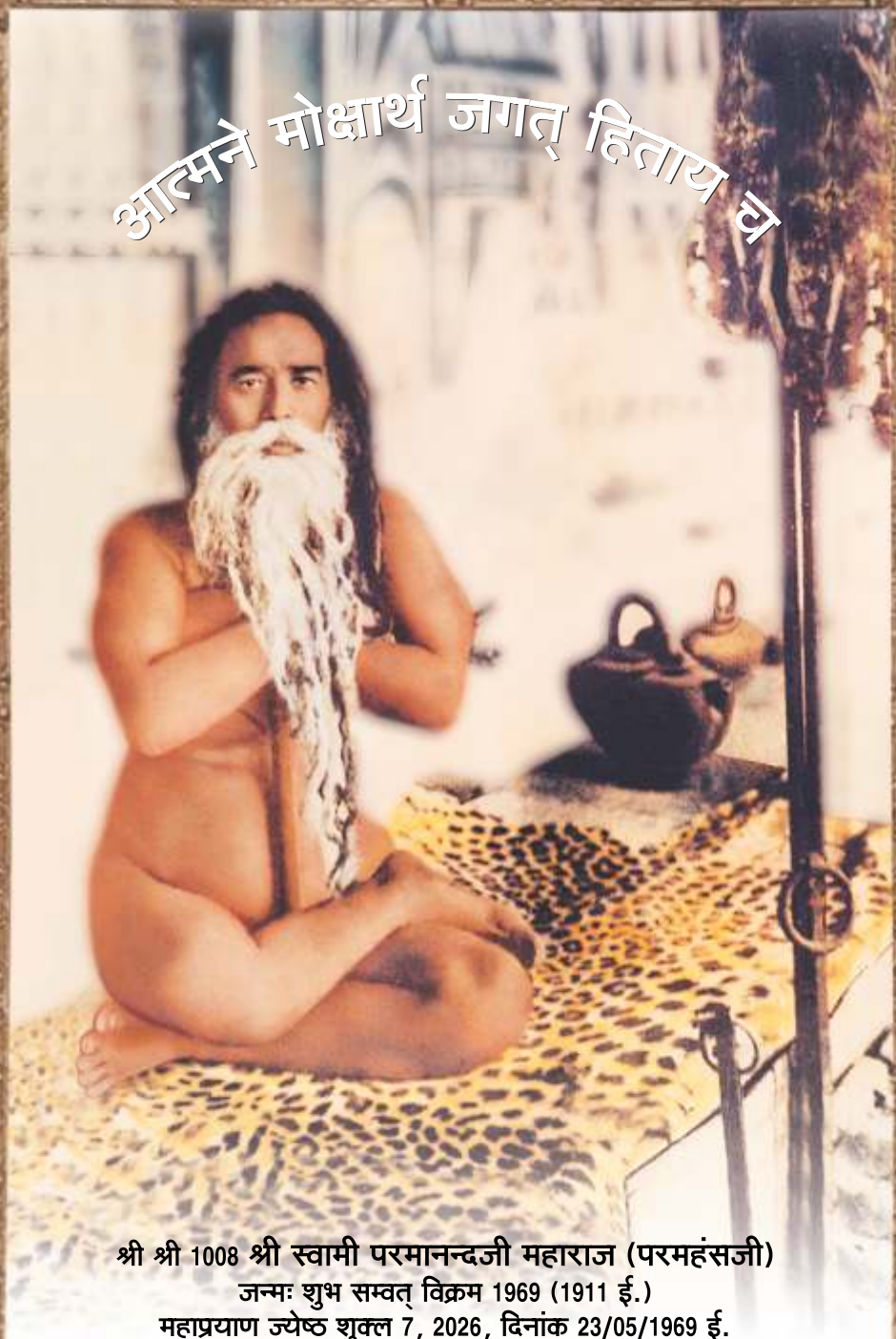

श्री श्री 1008 श्री स्वामी परमानन्दजी महाराज (परमहंसजी)

जन्मः शुभ सम्वत् विक्रम 1969 (1911 ई.)

महाप्रयाण ज्येष्ठ शुक्ल 7, 2026, दिनांक 23/05/1969 ई.

परमहंस आश्रम अनुसुइया, चित्रकूट

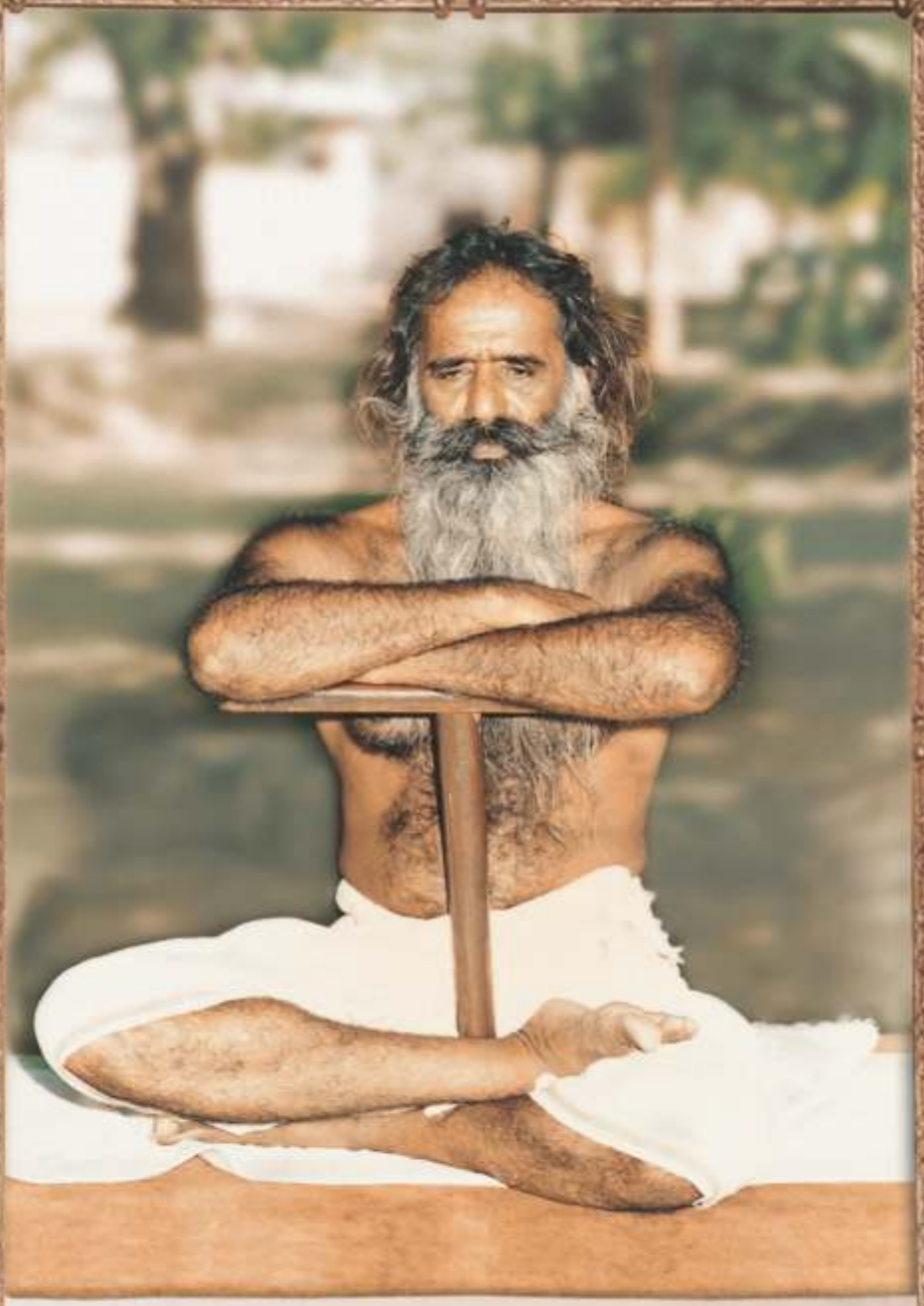

श्री स्वामी अड़गड़ानन्द जी महाराज

विषय-सूची

क्रम	विषय	पृष्ठांक
1.	नवयुवकों में प्रचलित है कि भजन या मंत्रजप एक अंधविश्वास है जो वृद्ध पुरुषों द्वारा श्रद्धा से भगवान के प्रति किया जाता है। क्या यह सत्य है?	11
2.	मंत्र क्या है?	17
3.	मंत्रजप के लिए श्रद्धा या विश्वास का क्या प्रयोजन है?	17
4.	क्या मंत्रजप से शारीरिक या मानसिक अथवा कोई मनोवैज्ञानिक लाभ होता है?	18
5.	आपका प्रिय मंत्रजप क्या है?	18
6.	क्या मंत्रजप सम्पूर्ण दुःखों के निवारण का सफल तरीका है?	19
7.	मानव जीवन-शैली में आध्यात्मिकता की क्या भूमिका है?	20
8.	गायत्री मंत्र की उत्पत्ति कहाँ से है? देवी गायत्री के बारे में बतायें।	22
9.	गायत्री मंत्र का अर्थ क्या है?	26
10.	गायत्री मंत्र का वैज्ञानिक, तार्किक या दार्शनिक पक्ष क्या है? गायत्री मंत्र जपने से क्या लाभ है?	26
11.	गायत्री मंत्र से किस कठिनाई को दूर किया जा सकता है?	27
12.	गणेश पूजा क्या है? गणेश मंत्र क्या है?	27
13.	भगवान शिव के बारे में संक्षेप में बतायें।	30
14.	शिव शंभु मंत्र की उत्पत्ति कैसे हुई?	30
15.	शिव शंभु मंत्र का अर्थ बतायें।	30
16.	शिव शंभु मंत्र से किन कठिनाइयों को हल किया जा सकता है?	31
17.	भगवन्! हनुमान के विषय में कुछ बतायें। उनका धर्म में क्या स्थान है?	33
18.	हनुमान चालीसा क्या है?	36
19.	ध्वनि क्या है? ध्वनि की शक्ति समझायें।	37
20.	जप क्यों करना चाहिए? जप का उचित समय, स्थान बतायें।	38

नवयुवकों की जिज्ञासाएँ और भजन से लाभ

(प्रश्नोत्तरी)

(दिनांक 20 सितम्बर से 3 नवम्बर 2010 तक की अवधि में फरीदाबाद, हिमाचल प्रदेश, नैनीताल एवं नेपाल के समीपवर्ती पर्वतीय क्षेत्रों के भ्रमण के समय नवयुवकों ने भजन एवं अध्यात्म के औचित्य की जिज्ञासाएँ महाराजश्री से कीं, जिनका समाधान महाराजश्री ने इस प्रकार दिया...)

1. *नवयुवकों में प्रचलित है कि भगवान के प्रति मंत्रजप या भजन एक अंधविश्वास है। क्या यह सत्य है? आप इस पर प्रकाश डालें।*

यह धारणा पूर्णतः असत्य है। यह कोई नयी बात नहीं है। नवयुवकों में ही नहीं अपितु मानवमात्र में यह प्रवृत्ति अनादिकाल से ही चली आ रही है। ऐसी ही सोच रावण की भी थी। वाल्मीकि रामायण उत्तरकाण्ड के सत्रहवें सर्ग में है कि एक बार रावण पुष्पक विमान से विचरण कर रहा था। जंगल में एक ब्राह्मण-कन्या वेदवती तपस्या कर रही थी। रावण ने दौड़कर उसके बाल पकड़ लिये और कहा– ''ऐसा रूप, सौन्दर्य और यौवन! चलो, मैं तुम्हें लंका की महारानी बनाऊँगा। यह तपस्या तो बूढ़ों, अपाहिजों, लँगड़ों या अन्धों के लिए है। भजन से क्या होता है? स्वर्ग मिलेगा! स्वर्गिक देवता तो हमारे यहाँ विधिवत् सेवा करते हैं। चलो, लंका चलो!'' अतः यह विचार तो लाखों-करोड़ों वर्ष पूर्व सृष्टि के आरम्भ से ही चला आ रहा है। हिरण्यकश्यप ने कहा– मैं भगवान और भगवान का नाम; दोनों को ही मिटा दूँगा। किन्तु भगवान ही एक सक्षम सत्ता है, उसने एक मासूम बच्चे प्रह्लाद का स्पर्श कर दिया तो हिरण्यकश्यप की सारी शक्ति व्यर्थ हो गयी। उसे हाथियों से कुचलवाया, समुद्र में फेंका, आग में झोंका, जलते स्तम्भ से बाँधा और अन्त में जो षड्यन्त्र प्रह्लाद के लिए निश्चित किया था, उसी में उलझकर स्वयं मर गया। भगवान का चारों ओर बोलबाला हो गया। भगवान ही एकमात्र अक्षय सत्ता है। यह निर्विवाद है।

नवयुवकों में ईश्वर और आध्यात्मिकता के प्रति अनास्था का प्रचलन सुशिक्षा के अभाव से है। केवल 'खाओ-पीओ और मौज करो' की शिक्षा का प्रचार विश्व के अधिकांश देशों में है; किन्तु उनके दुःखों की भी कोई सीमा नहीं है। अन्य देशों की तुलना में भारत में शान्ति अधिक है। यह धर्म की ही देन है। माताओं को चाहिए कि शैशवावस्था से ही बच्चों को संस्कारवान् बनायें।

अमेरिका की धर्मसभा में स्वामी विवेकानन्द जी ने पूर्व और पश्चिमी संस्कृति का अन्तर बताते हुए कहा कि भारत के किसान कृषिकार्य के उपरान्त आराम के क्षणों में भगवान की चर्चा करते हैं कि अमुक सन्त ने ऐसा कहा, फलाँ शास्त्र में यह लिखा है; लेकिन आपके यहाँ जब दो-चार व्यक्ति एकत्र होते हैं तो राजनीति की चर्चा करते हैं। इसलिए बाल्यकाल से ही शिक्षातन्त्र में आत्मदर्शन की विधि आनी चाहिए और मानवमात्र के लिए इस विधि का समग्र वर्णन श्रीमद्भगवद्गीता में उपलब्ध है जिसका यथावत् भाष्य 'यथार्थ गीता' का अनुशीलन प्रत्येक मानव को करना चाहिए; क्योंकि यह मूल धर्मशास्त्र है। यह न हिन्दुओं का है न ईसाइयों का, न मुसलमानों का और न यहूदियों का ही है। सृष्टि की परम्पराओं और रूढ़ियों से मुक्त यह शास्त्र मज़हबमुक्त, भेदभावमुक्त, सम्प्रदायमुक्त है। यह मानवमात्र को एक जैसी शान्ति, शाश्वत धाम और सदा रहनेवाला भगवत्स्वरूप प्रदान करता है *(गीता, 18/62)* और सबको आत्मस्वरूप का दिग्दर्शन कराता है। गीतोक्त साधन पर आप चलकर देखें कि स्वल्प अभ्यास से ही भगवान उँगली पकड़कर चलाने लगते हैं। हाँ, जिन बच्चों में इस शिक्षा का अभाव है, वे अज्ञानवश कुछ भी कह सकते हैं।

बच्चों में अध्यात्म और संस्कृति के प्रति अरुचि का एक कारण और भी है। भगवान श्रीकृष्ण ने आदिशास्त्र गीता में बताया कि मनुष्य दो प्रकार का होता है– असुरों-जैसा और देवताओं-जैसा। जिस हृदय में आसुरी सम्पद् कार्य करती है वह असुर है और जिसमें दैवी सम्पद् कार्यरत है वह देवता है। **'दैवी सम्पद् विमोक्षाय'** *(गीता, 16/5)*- दैवी सम्पद् परमकल्याण करने के लिए है। अर्जुन! तू शोक मत कर, तू दैवी सम्पद् को प्राप्त हुआ है, तू मुझे प्राप्त

होगा। मेरे अविनाशी सहज स्वरूप, सदा रहनेवाली शान्ति, सदा रहनेवाला जीवन, मेरे शाश्वत धाम को प्राप्त कर लोगे और जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि-दुःख-दोषों से सदा के लिए मुक्त हो जाओगे *(13/8; 14/20)*। दैवी सम्पद् शनैः-शनैः परमदेव परमात्मा का देवत्व अर्जित कराती है और एक दिन परमात्मा का दर्शन, स्पर्श, उसमें प्रवेश दिला देती है।

आसुरी सम्पद् अनन्त योनियों में भटकाती है और जो कभी न पूर्ण हों, ऐसी अनन्त इच्छाओं और अनन्त वासनाओं में भरमाती है – एक अन्तहीन यात्रा जिसकी गति कभी न रुके, लक्ष्य तक पहुँचेंगे कभी नहीं। यह आवागमन का रास्ता है। यह है प्रवृत्ति मार्ग जिसमें सदा प्रवृत्त रहना है जबकि दैवी सम्पद् निवृत्ति मार्ग है, परमदेव का स्पर्श करके सदा के लिए निवृत्ति हो जाती है। सच पूछिए तो प्राणियों के स्वभाव दो प्रकार के होते हैं। दैवी सम्पद्वाला देवता है और आसुरी स्वभाववाला असुर। आसुरी स्वभाववाला कहता है कि भगवान अनावश्यक है। यह तो वृद्धों के समय काटने का एक तरीका है।

बच्चे तो कोरे कागज हैं, स्वच्छ हैं। संगत का जैसा ठप्पा लग जायेगा वैसा ही आचरण करने लगते हैं इसीलिए नवयुवकों में सद्संस्कारों के सृजन के लिए आदिशास्त्र गीता देनी चाहिए। गीता के अन्तर्गत विश्व के सभी शास्त्र आ जाते हैं; क्योंकि सर्वप्रथम गीता का ही उद्घोष है कि एक ईश्वर के अतिरिक्त अन्य किसी का अस्तित्व नहीं है। आत्मा ही परम सत्य है। वही काल से अतीत, मृत्यु से परे परम पुरुष है, उसे प्राप्त करो। विश्व में जितने महापुरुष हुए हैं, सभी इसी सन्देश को दुहरा रहे हैं कि अल्लाह के सिवाय कोई पूज्य नहीं, कोई ईश्वर-जैसा नहीं, केवल उसकी शरण जाओ। बौद्ध, जैन, सिख इत्यादि कोई अलग सम्प्रदाय नहीं, गुरुघराने हैं, सद्गुरुओं का दरबार है। आधी दूरी चलने के पश्चात् भिन्न-भिन्न प्रतीत होने वाले ये सभी मत-मतान्तर सिमटकर एक इकाई बन जाते हैं। वह इकाई करनेवाली साधना-पद्धति केवल गीता है। इसलिए बच्चों को संस्कारवान् बनाने के लिए उन्हें सही शिक्षा, सही दिशा देना आवश्यक है।

भजन के सम्बन्ध में यहाँ एक स्पष्टीकरण आवश्यक है। आजकल प्रायः सभी तीर्थों में, गुजरात, महाराष्ट्र, राजस्थान, पंजाब, दक्षिण भारत, बंगाल, असम इत्यादि सम्पूर्ण भारत में, देश-विदेश में यत्र-तत्र यही प्रचलन में है कि भजन माने महापुरुषों की वाणियों के रूप में ईश्वरीय गुणानुवाद के पदों का भावविभोर होकर गायन, ढोलक-मजीरे के साथ संकीर्तन, रात्रि-जागरण, सुधबुध खोकर और झूमकर नृत्य करना – इसी को भजन कहते हैं। इसके अतिरिक्त भी भजन की विधि है जिसका ज्ञान लोगों को नहीं है।

भजन के प्रति श्रद्धा जगाने के लिए महापुरुषों की वाणियों का पाठ, ईश्वरीय लीलाओं का गायन-संकीर्तन आवश्यक है। भगवत्-पथ में आधी दूरी तक यह गायन-कीर्तन साथ देते हैं; यह गुणानुवाद है जिसका समर्थन भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में किया है। अध्याय दस के आठ से बारहवें श्लोक में वे कहते हैं कि मुझे ही संसार का नियन्ता मानकर विवेकीजन निरन्तर मेरा भजन करते हैं। वे किस प्रकार भजन करते हैं? इस पर कहते हैं– वे सदैव मेरा ही गुणगान करते हुए मेरी लीलाओं का परस्पर बोध करते हुए भजते हैं। ऐसे श्रद्धालु भक्तों को मैं वह बुद्धियोग देता हूँ जिससे वे मुझे प्राप्त होते हैं। आप बुद्धियोग किस प्रकार देते हैं? भगवान कहते हैं– मैं उनकी आत्मा से जागृत होकर उनके हृदय से सञ्चालित होकर अज्ञान से उत्पन्न अंधकार को ज्ञानरूपी दीपक से प्रकाशित करता हूँ अर्थात् किसी महापुरुष द्वारा जब तक वह परमात्मा आपकी आत्मा से ही जागृत होकर रोकथाम नहीं करता, प्रकृति के द्वन्द्व से निकालते हुए स्वयं आगे नहीं ले जाता, तब तक वास्तव में यथार्थ भजन आरम्भ ही नहीं होता अर्थात् भजन एक जागृति है। अपनी ही आत्मा बताने लगती है कि ऐसे चल, ऐसे कर, अब जाग, अब भजन कर। इस विधि से भगवान जैसे-जैसे सञ्चालित करते हैं, उनके निर्देशों को समझना और उस पर चलना – यह ज्ञान की निम्नतम सीमा है, भजन की जागृति है। उन्हीं के निर्देशन में चलते हुए क्रमशः स्तर उठ जाने पर परमतत्त्व परमात्मा का प्रत्यक्ष दर्शन और दर्शन के साथ मिलनेवाली जानकारी ज्ञान है; सृष्टि में अन्य जो कुछ

भी है अज्ञान है। यह ज्ञान की अधिकतम सीमा है, जिसे भगवान ने कहा कि उन्हें ज्ञानरूपी दीपक के द्वारा प्रकाशित करता हूँ।

जबसे भजन की यह जागृति आती है भगवान पढ़ाने, समझाने लगते हैं। तब आरम्भ होता है श्वास का भजन। शान्त बैठ जायँ; देखें, श्वास कब अन्दर गयी, इसे पहचानें। श्वास कब बाहर गयी, इसे देखें। बाहर श्वास कितना रुकी, इसे समझें। यह कब अंदर लौटकर आयी, इसको भी जानें; अन्दर कितना रुकी– इसे समझें। दो-चार बार जब मन भली प्रकार देखने लगे, विचारों से देखें और चिन्तन से ही नाम श्वास में ढाल दें। श्वास आयी तो 'ओम्', गयी तो 'ओम्'। 'ओम्.....ओम्.....' धीरे-धीरे चिन्तन से ढालते जायँ। एक भी श्वास व्यर्थ न जाने पाये। थोड़ा अभ्यास और उन्नत होते ही आप पायेंगे कि श्वास नाम के अतिरिक्त अन्य कुछ कहती ही नहीं। आप देखा भर करें कि श्वास कब आयी, क्या कहा? कब गयी, क्या कहा? श्वास में मन की दृष्टि एकदम खड़ी हो जाय, वृत्ति श्वास में समाहित हो जाय। पहले मन कहाँ-कहाँ दौड़ता रहता था, मन की यह भागदौड़ शान्त हो जाय, इसी का नाम भजन है। भजना अर्थात् भाग ना – मन का भागना बन्द हो जाय। मन का स्थिर होना ही भजन है।

यह होता है चिन्तन से, सूरत के लगाने से (मन की दृष्टि का नाम सूरत है), संयम से। सतत अभ्यास से ही यह भजन अपनी कसौटी पर शनैः-शनैः खरा उतरता है। एक दिन मन भली प्रकार अचल स्थिर ठहर जाता है।

भजन के इस उन्नत स्तर की शुरुआत होती है धारणा, ध्यान और समाधि से। आरम्भ में धारणा मूर्ति में होती है। शील, शौच, अन्तःकरण की शुद्धि, वाह्य शुद्धि, तप और स्वाध्याय की धारणा होती है। साथ ही साधक धारण करता है अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। जब संयम सध गया तब साधक धारण करता है श्वास को, नाम को, इष्ट के स्वरूप को। वह सचेतावस्था में बैठकर श्वास को देखने लगता है, श्वास में विचरनेवाली वायु को

सम करके नाम और रूप को धारण करता है और जब धारण करने की क्षमता आ गयी तो–

'तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्।' *(पातंजल योगदर्शन, 3/2)*

जहाँ चित्त को लगाया जाता है वहीं वृत्ति का एक तार चलना, क्रम न टूटना ध्यान है और **'तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः।'** *(पातंजल योगदर्शन, 3/3)* – जहाँ चित्त को लगाया जाय वहाँ लक्ष्य मात्र का आभास रह जाय, चित्त का निज स्वरूप शून्य हो जाय, जैसे चित्त है ही नहीं, मन था ही नहीं, ॐ जपते हैं तो ॐ मात्र रह जाय। स्वरूप देखते हैं तो **'पद नख जोति'**– पद का नाखून मात्र रह जाय, अन्य दृश्य न रह जाय, देखनेवाले चित्त का स्वरूप शून्य हो जाय, यह समाधि है। सम और आदि! आदि तत्त्व, अनादि तत्त्व जो परमात्मा है उसमें समत्व दिला देनेवाली अवस्था आ गयी, जो सम है जिसमें विषमता नहीं है, उसका दर्शन, स्पर्श और प्रवेश मात्र शेष है। इस प्रकार एक सेकेण्ड में सृष्टि का चक्कर लगाकर लौट आनेवाले मन को शून्य, शान्त करके सम में स्थिर करना भजन की पराकाष्ठा है।

इस भजन की जागृति सद्गुरु से है। यह बहुत सुगम है। इसके लिए पहले आप एक प्रभु में श्रद्धा स्थिर करें, उनके परिचायक किसी एक नाम 'ओम्' या 'राम' का जप करें। खाते-पीते, चलते-फिरते, उठते-बैठते नाम स्मृति-पटल पर बना रहे। प्रातः-सायं आधा घण्टा समय नाम-जप में अवश्य दें। सब भूल जायँ, यह नाम-जप कभी न भूलें। सन्तों की सेवा करते रहें। भगवान जानते हैं कि यह मुझे पुकार रहा है, यह भी जानते हैं कि यह क्या चाहता है; लेकिन व्यवस्था वही देंगे जिसमें आपका हित है। आप पायेंगे कि जहाँ कोई नहीं देखता, भगवान वहाँ भी आपको देख रहे हैं। योगक्षेम की इस संरक्षा के लिए साधक को सदैव सद्गुरु के प्रति कृतज्ञ रहना चाहिए। सन्त कबीर कहते हैं–

बलिहारी गुरु आपने, द्यौहाड़ी कै बार।
जिन मानुष ते देवता, करत न लागी बार॥

2. *मंत्र क्या है?*

मंत्र परमात्मा का नाम है, वाचक है, सम्बोधन है, नाम-जप से मिलनेवाली स्थिति है। परमात्मा का बोध करानेवाले किसी दो-ढाई अक्षर के नाम को चार श्रेणियों से जपा जाता है। आरम्भ बैखरी से है। इससे उन्नत क्रमशः मध्यमा, पश्यन्ती और परा की श्रेणियाँ हैं। वायु से भी तीव्र गति से चलनेवाला मन परावाणी के प्रवेशकाल में सब ओर से सिमटकर नाम के अन्तराल में स्थान पा जाता है, तब यह साधारण-सा नाम मंत्र की संज्ञा पा जाता है। मंत्र एक अवस्था है। **'मन अंतर स मंत्र'**– जिससे अपने अन्तराल में मन स्थिर हो जाय, मंत्र है। मन विषयों से कभी तृप्त नहीं होता– **'जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई।'** *(मानस, 6/101/1)*। विषयों में विचरते हुए यह मन कभी स्थिर नहीं होगा। नाम को मंत्र बनाने के लिए श्रद्धा के साथ प्रभु के नाम का जप करें।

3. *मंत्रजप के लिए श्रद्धा या विश्वास का क्या प्रयोजन है?*

श्रद्धा के बिना तो कुछ होता ही नहीं और इसका सार्थक प्रयोग मंत्रजप में है, सृष्टि में अन्यत्र कहीं नहीं। लोक-व्यवहार में माता-पिता, पति-पत्नी, गुरुजनों या उच्चाधिकारियों के प्रति श्रद्धा का प्रदर्शन देखने को मिलता है जिसके मूल में स्वार्थ ही प्रधान है किन्तु स्वार्थपूर्ति में विघ्न आते ही श्रद्धा तिरोहित हो जाती है। वास्तविक श्रद्धा परमात्मा या सद्गुरु के प्रति ही होती है; क्योंकि **'हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी॥'** *(रामचरितमानस, 7/46/5)*

भगवान श्रीकृष्ण ने 'गीता' में कहा–

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह॥ *(17/28)*

अर्जुन! बिना श्रद्धा के होमा हुआ हवन, दिया दान, तपा तप– सब व्यर्थ चला जाता है, जैसे कुछ हुआ ही नहीं और **'श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं**

तत्परः संयतेन्द्रियः।' *(5/39)*– परमात्मा के प्रति समर्पित उस ज्ञान को प्राप्त कर लेता है जिसे पाने के बाद कुछ भी पाना शेष नहीं रह जाता। इसलिए प्रभुनाम के जप में श्रद्धा प्रथम अनिवार्य शर्त है।

4. *क्या मंत्रजप से शारीरिक या मानसिक अथवा कोई मनोवैज्ञानिक लाभ होता है?*

मंत्र शारीरिक विकारों के शमन में सहायक है। स्वस्थ शरीर के लिए मन का नीरोग रहना आवश्यक है। मंत्र मानसिक विकारों की मनोचिकित्सा है। यह मन को समेटकर प्रभु की ओर प्रवाहित करता है जिससे शारीरिक, मानसिक समस्त दुःखों से सदा-सदा के लिए छुटकारा मिल जाता है। मंत्रजप भजन-सुमिरन का एक अंग है जिससे नैतिक मूल्यों की वृद्धि के साथ किसी राष्ट्र के उज्ज्वल चरित्र का निर्माण भी होता है।

5. *आपका प्रिय मंत्रजप क्या है?*

सृष्टि में जप का एक ही नियत विधान है इसलिए सबका प्रिय एक ही जप है– एक परमात्मा के प्रति श्रद्धा और उनको जो सीधा पुकारे, उस किसी एक नाम का जप! ईश्वर-पथ की आधी दूरी तक प्रभु का कोई भी नाम ठीक है किन्तु अन्त में जप के लिए केवल एक नाम 'ओम्' है। 'ओ' अर्थात् वह अविनाशी परमात्मा, 'अहं' अर्थात् आप स्वयं! इस प्रकार 'ओम्' से वह प्रभु ध्वनित होते हैं जिनका निवास आपके हृदय में है। 'ओम्' जप का आदि नाम है और भगवान के श्रीमुख से सीधा प्रसारित हुआ है–

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा॥ *(गीता, 17/23)*

अर्जुन! ओम्, तत् और सत् परमात्मा के नाम हैं जो परब्रह्म परमात्मा के मुख से प्रसारित हुए हैं। इसी के द्वारा यज्ञ, वेद और ब्राह्मण रचे गये। ब्राह्मण जन्मता नहीं, ब्राह्मण एक संरचना है। ओम् भी परमात्मा के मुख से प्रसारित

हुआ है। आदि मंत्र वही है। सृष्टि में प्रथम प्रकट होनेवाला शास्त्र गीता है। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं– इस अविनाशी योग को मैंने सृष्टि के आदि में सूर्य से कहा। सूर्य ने महाराज मनु से कहा। मनु महाराज ने स्मृति-परम्परा से इसे इक्ष्वाकु से कहा। इक्ष्वाकु से राजर्षियों ने जाना। वह लुप्त हो चला तो मैं इसे तेरे प्रति कह रहा हूँ *(गीता, 4/1)*। इस आदिशास्त्र गीता में भी भगवान ने ओम् जपने का निर्देश दिया।

मनु दीर्घजीवी थे। उन्होंने एक प्रलय देखा था। भगवान ने उनकी परीक्षा ली। संतुष्ट होकर उन्होंने कहा– मनु, तुम्हारी सृष्टि को मैं बचा लूँगा। एक नौका में सृष्टि के बीज रख लो। प्रलय आने पर मैं मत्स्यरूप में आऊँगा। मेरे सिर पर एक सींग होगा। उस सींग से नाव को सुदृढ़ रस्सी से बाँध देना। नाव उत्ताल तरंगों पर चलने लगी तो मत्स्य भगवान के रूप में परिवर्तित हो गया और उससे वेद उच्चरित होने लगे। प्रलय का अन्त होते-होते मनु ने चार वेदों को एकत्र कर लिया जिसे सुनने के कारण मनु ने उनका नाम 'श्रुति' रखा। ये वेद गीता के ही विस्तार हैं और ओम् शब्द पर आधारित हैं। इस प्रकार ओम् आदि नाम है। तत् का अर्थ है वह परमात्मा और सत् अर्थात् वही एक सत्य है, अन्य कुछ नहीं। तीनों नामों का अर्थ एक ही है। इससे आप समझ ही गये होंगे कि हमने भी ओम् का ही जप किया है।

6. *क्या मंत्रजप सम्पूर्ण दुःखों के निवारण का सफल तरीका है?*

दुनिया में सभी दुःखों से बचने का ही प्रयास कर रहे हैं किन्तु दुःख बढ़ता ही जाता है (राजा दुखिया, परजा दुखिया.....।)। दुःखों का निवारण मात्र परमात्मा की प्राप्ति से है जिसकी साधना मंत्रजप से आरम्भ होती है। भगवत्पथ के चार क्रमोन्नत सोपान नाम, रूप, लीला और धाम हैं। आप जब नाम जपना आरम्भ करेंगे तब रूप का क्रमोन्नत स्तर मिल जायेगा– **'सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें। आवत हृदयँ सनेह बिसेषें॥'** *(रामचरितमानस, 1/20/6)*– विशेष स्नेह की डोर लग जायेगी तो हृदय में स्वरूप आ जायेगा,

उसी का ध्यान करना है। जहाँ रूप पकड़ने की क्षमता आयी तहाँ लीला समझ में आने लगेगी कि भगवान कण-कण में कैसे व्याप्त हैं, कैसे ज्योतिर्मय हैं, कैसे योगक्षेम करते हैं, कैसे मनुष्यों की आपूर्ति करते हैं! इस प्रकार उनकी विभूतियों का प्रसारण होने लगता है। उस निर्देशन में चलते हुए जहाँ लीलाधारी का स्पर्श हुआ, जहाँ बैठकर वह संचालन कर रहे हैं, तहाँ धाम अर्थात् स्थिति प्राप्त कर भगवद्दर्शन और प्रवेश मिल जाता है। साधना के ये चारों क्रमोन्नत सोपान हैं जिनमें मंत्र-जप का सर्वप्रथम स्थान है। क्रमशः स्तर उठता जायेगा, दुःख पीछे छूटते जायेंगे, सहज सुखराशि प्रभु हैं उनमें स्थान मिलता जायेगा। दुनिया '**दुःखालयमशाश्वतम्**' *(गीता, 8/15)*- दुःखों का घर है। कभी यह तो कभी वह सुखद प्रतीत होता है। वाह्य अन्य तरीकों से यह कमी कभी पूर्ण नहीं होगी।

7. मानव जीवन-शैली में आध्यात्मिकता की क्या भूमिका है?

सच पूछिये तो आध्यात्मिकता का कोर्स मनुष्य के लिए ही है। विनयपत्रिका में गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है–

जो पै लगन राम सों नाहीं।
तौ नर खर कूकर सूकर सम वृथा जियत जग माहीं॥
काम क्रोध मद लोभ नींद भय भूख प्यास सबही के।
मनुज देह सुर साधु सराहत सो सनेह सिय पी के॥ *(पद 175)*

'गीता' के अनुसार मनुष्य शरीर में ही कर्मों के अनुरूप बन्धन तैयार होता है– शुभ करोगे तो शुभ, अशुभ करोगे तो अशुभ। अन्य योनियाँ तो केवल भोग भोगने के लिए हैं *(15/2)*, नवीन साधना करके कर्मों में किसी प्रकार का सुधार नहीं कर सकतीं। वर्तमान में ही नहीं, सृष्टि के आदिकाल से अद्यतन और भविष्य में भी जब तक सृष्टि रहेगी, अध्यात्म ही मानव-तन की सार्थकता है। समाज में अध्यात्म शब्द सुन रखा है, जानते नहीं हैं। अध्यात्म अधि आत्म का योग है अर्थात् आत्मा का आधिपत्य हो जाना। सामान्यतः सभी लोग माया के आधिपत्य में हैं। '**फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म**

सुभाव गुन घेरा॥' *(रामचरितमानस, 7/43/5)*– जीव काल, कर्म, स्वभाव और गुण द्वारा माया से प्रेरित होकर नाच रहा है। इसका माया के चंगुल से निकालकर आत्मा के आधिपत्य में प्रवेश पाना अध्यात्म है जिससे आत्मा आपका संचालन करने लगे और उसके संरक्षण में चलता हुआ जीव परमतत्त्व परमात्मा का दर्शन, प्रवेश और उसमें स्थिति पा जाय।

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा॥ *(गीता, 13/11)*

आत्मा के आधिपत्य में निरन्तर चलना अध्यात्म का आरम्भ है। उसके संरक्षण में चलते हुए परमतत्त्व परमात्मा का प्रत्यक्ष दर्शन और दर्शन के साथ मिलनेवाली जानकारी ज्ञान है। यही अध्यात्म की पराकाष्ठा है। इसके अतिरिक्त सृष्टि में जो कुछ है अज्ञान है।

'साधन धाम मोच्छ कर द्वारा।' *(रामचरितमानस, 7/42/8)*– यह देवदुर्लभ मानव-तन आपको सौभाग्य से प्राप्त है तो अध्यात्म की दिशा पकड़ें। आप पशु हैं, कीटाणु हैं तो कोई बात नहीं है। **'आहार निद्रा भय मैथुनं च सामान्य एतद् पशुभिः नराणाम्'**– यह तो सबके पास है। परमात्मा तक को प्रसन्न कर लेने की क्षमता केवल मनुष्य-शरीर में है। अध्यात्म आप सबका गन्तव्य है। वैचारिक गोष्ठियों में अध्यात्म-अध्यात्म कहने से अध्यात्म नहीं होता। इसके लिए श्रीमद्भगवद्गीता का यथावत् भाष्य 'यथार्थ गीता' आप तीन-चार बार पढ़ लें तो समझ में आ जायेगा कि अध्यात्म क्या है? हम कौन हैं? हम अपवित्र हैं या पवित्र? धर्म क्या है? भजन क्या है, कैसे और क्यों करें?– इन सारी समस्याओं का समाधान मिल जायेगा। मात्र आजकल नहीं बल्कि सदा ही यदि मानव-तन मिला है तो उसके लिए ठीक साधना है तो केवल अध्यात्म, जिससे सद्गृहस्थ आश्रम में रहते हुए भी, सुचारु रूप से गृहस्थी चलाते हुए भी भजन की जागृति, प्रत्यक्ष प्रभु का संरक्षण और स्थिति के लिए आदि अध्यात्मशास्त्र श्रीमद्भगवद्गीता भाष्य 'यथार्थ गीता' का पाठ्यक्रम में होना नितान्त आवश्यक है।

8. *गायत्री मंत्र की उत्पत्ति कहाँ से है? देवी गायत्री के बारे में बतायें।*

वेदमाता गायत्री, ब्राह्मणमाता गायत्री की चर्चा आश्रमीय प्रकाशन 'शंका-समाधान' में द्रष्टव्य है। उसकी पुनरावृत्ति न कर संक्षेप में चर्चा अपेक्षित है। वैसे गायत्री कोई देवी नहीं है। पौराणिककाल के कतिपय प्रवृत्तमार्गी व्यवस्थाकारों ने गायत्री को देवी-जैसा रूप दे डाला। गायत्री मंत्र की उत्पत्ति महर्षि विश्वामित्र से है। जीवन के आरम्भिक वर्षों में यह महर्षि राजा गाधि के पुत्र विश्वरथ नामक नरेश थे। चक्रवर्तित्व की कामना से विश्वविजय कर रहे यह नरेश ब्रह्मर्षि वशिष्ठ के ब्रह्मतेज से पराभूत हो गये अतः ब्रह्मतेज अर्जित करने के लिए तपस्या करने लगे।

उन्हें तपस्या से विरत करने के लिए देवताओं ने मेनका नामक अप्सरा को भेजा। विश्वामित्र उस पर आसक्त हो गये। उससे शकुन्तला नामक एक कन्या उत्पन्न हुई। सद्यःजात बालिका की सुरक्षा से चिन्तित ऋषि मेनका को जंगल में ढूँढ़ने लगे। आकाशवाणी हुई– वह तो माया थी, ठगने आई थी चली गई। आप तप से च्युत हो गये!

विश्वामित्र पुनः तपश्चर्या में लग गये। एक नरेश त्रिशंकु ने उनसे सदेह स्वर्ग जाने का अनुरोध किया। महर्षि ने अपने तपोबल से उसे स्वर्ग भेज भी दिया। देवताओं को यह अच्छा नहीं लगा। उन्होंने त्रिशंकु की प्रशंसा कर जानना चाहा कि किस पुण्यकर्म से वह सदेह स्वर्ग आया। त्रिशंकु ने अपने पुण्यकर्मों को बढ़ा-चढ़ाकर बताया जिससे उसका पुण्य क्षीण होने लगा। वह स्वर्ग से नीचे गिरने लगा। उसने विश्वामित्र को अपनी दुर्दशा से अवगत कराया। ऋषि ने उसे अधर में ही रुकने का आदेश दिया और उसके लिए अलग स्वर्ग और सृष्टि की संरचना में लग गये। देवताओं के अनुरोध पर विश्वामित्र नवीन सृष्टि-रचना से विरत तो हो गये किन्तु इससे उनकी तपस्या को गहरी क्षति पहुँची।

एक बार महाराज अम्बरीष अश्वमेध यज्ञ कर रहे थे। इन्द्रपद छिन जाने के भय से देवराज इन्द्र ने यज्ञ का अश्व चुरा लिया। अश्व की शोध में राजा जंगलों में पहुँचे। वहाँ एक राजा, उनकी रानी तथा तीन राजकुमार राज्य छिन जाने से शान्त-एकान्त में जीवन व्यतीत कर रहे थे। अम्बरीष ने उन राजा को बताया कि यज्ञ का घोड़ा गायब हो गया है। आप अपना कोई पुत्र दे दें तो मैं आपको लाखों गायें, स्वर्णमुद्राएँ दूँगा। बच्चों के पिता ने कहा– बड़ा पुत्र मुझे प्रिय है, मैं नहीं दे सकता। माँ बोली– छोटा पुत्र मुझे प्रिय है, मैं नहीं दे सकती। मझले लड़के ने कहा– राजन्! मैं किसी को प्रिय नहीं हूँ अतः मैं आपके साथ चलूँगा। आप गायें, स्वर्णमुद्राएँ इन्हें दे दें। उस बालक का नाम शुनःशेप था।

राजा और बालक उसी मार्ग से जा रहे थे जहाँ विश्वामित्र तपस्या कर रहे थे। विश्वामित्र ने बालक को पहचान लिया क्योंकि वह उनका भांजा था। शुनःशेप ने बताया कि वह बलि चढ़ने जा रहा है। विश्वामित्र ने कहा– मेरे सौ पुत्र हैं, उनमें से कोई तुम्हारे स्थान पर चला जायेगा। तुम चिन्ता न करो। विश्वामित्र ने अपने पुत्रों से कहा– इसे मैंने अभयदान दिया है, मेरी शरण में है। तुममें से कोई इसके बदले अपने को बलि हेतु प्रस्तुत कर दो। बच्चों ने कहा– सबके पिता झूठ-सच बोलकर अपने पुत्रों का हित करते हैं, आप कैसे पिता हैं जो मरने के लिए कहते हैं! सबने अस्वीकार कर दिया। विश्वामित्र को क्रोध आ गया, बोले– बचोगे तब भी नहीं! जाओ सब-के-सब मर जाओ। सब मर गये। आकाशवाणी हुई कि आपका तप नष्ट हो गया।

विश्वामित्र ने तब ध्यानस्थ होकर देखा और शुनःशेप से कहा कि अश्व को इन्द्र ने चुराया है। तुम बलि के लिए जाओ और जब तुम्हें बलिहेतु स्तम्भ से बाँध दिया जाय, तब तुम इन्द्र की स्तुति करना। इन्द्र अश्व दे देगा, तुम छूट जाओगे। घोड़ा मिल गया। शुनःशेप बच गया। सप्तर्षियों ने उस बालक को अपनी संरक्षा में ले लिया।

विश्वामित्र ने विचार किया कि लाख प्रयत्न करके भी मैं तपस्या में सफल नहीं हो पा रहा हूँ। माया कब प्रवेश करती है मुझे पता ही नहीं चलता। जब

आकाशवाणी सूचित करती है तब ज्ञात हो पाता है। लगता है कि मैं अपने बल से इन बाधाओं पर विजय नहीं प्राप्त कर सकता। अन्ततः विश्वामित्र ने एक परमात्मा की शरण ली कि– **'ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।'** *(यजुर्वेद, अध्याय 36, कण्डिका 3)* अर्थात् ॐ शब्द से उच्चरित, भूः, भुवः और स्वः तीनों लोकों में तत्त्वरूप से व्याप्त **'सवितुः'**– ज्योतिर्मय परमात्मा! आपके **'वरेण्य भर्ग'** अर्थात् तेज का हम **'धीमहि'**- ध्यान करते हैं। **'नः धियः प्रचोदयात्'**– हमारी बुद्धि में निवास करें, मुझे प्रेरणा दें। इस प्रकार अपने को भगवान के प्रति समर्पित कर विश्वामित्र तपस्या में लग गये। माया विश्वामित्र के पास आई, उनकी परिक्रमा कर लौट गयी। ब्रह्मा आये और कहा– आज से आप ऋषि हुए, महर्षि हुए; किन्तु विश्वामित्र ने कहा– हमें जितेन्द्रिय ब्रह्मर्षि कहें। ब्रह्मा ने कहा– अभी आप जितेन्द्रिय नहीं हैं।

विश्वामित्र तपस्या में लगे ही रह गये। विधाता तीसरी बार समस्त देवताओं सहित पहुँचे और कहा– आज से आप ब्रह्मर्षि हुए। विश्वामित्र ने कहा– यदि मैं ब्रह्मर्षि हूँ तो वेद मेरा वरण करें। विश्वामित्र के पास वेद आ गये। जो परमात्मा अविदित था वह विदित हो गया। वेदों का अध्ययन नहीं करना पड़ता बल्कि प्राप्ति के साथ मिलनेवाली प्रत्यक्ष अनुभूति का नाम वेद है। वेद का अर्थ है जानकारी, परमात्मा जानने में आ गया। विश्वामित्र ने कहा– वशिष्ठ दर्शन दें। वशिष्ठ आये, विश्वामित्र से गले मिले।

इस प्रकार गायत्री एक परमात्मा के प्रति समर्पण है। इसके द्वारा हम-आप त्रिगुणमयी प्रकृति का पार पा सकते हैं कि भूः भुवः स्वः तीनों लोकों में तत्त्वरूप से जो व्याप्त है, जो सहज प्रकाशस्वरूप है, हे परमात्मा! आप मेरी बुद्धि में निवास करें जिससे मैं आपको जान लूँ। यह प्रार्थना गीता के अनुरूप है कि **'सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।'** *(18/66)*– सारे धर्मों को त्याग दे, मात्र मेरी शरण हो जा। मैं तुम्हें सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा। तू मुझे प्राप्त होगा। सदा रहनेवाला जीवन और शान्ति प्राप्त कर लेगा। यही है गायत्री!

रामचरितमानस में वर्णन आता है कि सीताजी ने जब रंगभूमि में चरण रखा, धनुष-यज्ञ हो रहा था। अनेक पराक्रमी राजा-महाराजा असफल होते जा रहे थे। दस-दस हजार राजा एक साथ प्रयास कर रहे थे। रावण और बाणासुर जैसे पराक्रमी नरेश भी चुपचाप लौट गये थे। सीता ने राम को देखा– शिरीष पुष्प जैसा कोमल शरीर!

तब रामहि बिलोकि बैदेही। सभय हृदयँ बिनवति जेहि तेही॥

(मानस, 1/256/4)

भयभीत हृदय से उस समय जो भी याद आया **'जेहि तेही'**– सबकी प्रार्थना की किन्तु कोई लाभ नहीं निकला। तब वह भोलेनाथ शिव-पार्वती की शरण गयीं– **'मनहीं मन मनाव अकुलानी। होहु प्रसन्न महेस भवानी॥'** *(मानस, 1//56/5)*– हे शंकर-पार्वती जी! मैंने आपकी जो सेवा की है, उसके बदले में **'करि हितु हरहु चाप गरुआई'**– मेरा हित सधता दिखायी पड़े तो चाप को हल्का कर दें। अभी हल्का कर देंगे तो ऐरा-गैरा कोई भी उसे तोड़ देगा। जब रामजी की उँगलियाँ धनुष का स्पर्श करें तभी चाप को हल्का करें; किन्तु कोई लाभ दिखायी न पड़ा, तब–

गननायक बरदायक देवा। आजु लगें कीन्हिउँ तुअ सेवा॥
बार बार बिनती सुनि मोरी। करहु चाप गुरुता अति थोरी॥

(मानस, 1/256/7-8)

हे गणेश जी! वर देने में आपकी ख्याति है। हमारी बार-बार विनती सुनकर चाप के भारीपन को बहुत ही कम कर दीजिए। सफलता मिलता न देख उन्होंने तैंतीस करोड़ देवी-देवताओं को एक साथ मना डाला–

देखि देखि रघुवीर तन, सुर मनाव धरि धीर।
भरे बिलोचन प्रेम जल, पुलकावली सरीर॥

(मानस, 1/257)

प्रेमाश्रु छलक आये। समस्त देवतागण चाप को हलका करें, फिर भी कहीं कोई लाभ नहीं हुआ। तब सीता आँखें बन्द कर उन प्रभु की शरण चली गयीं जिनकी शरण जाने का विधान है–

तन मन बचन मोर पनु साचा। रघुपति पद सरोज चितु राचा॥
तौ भगवानु सकल उर बासी। करिहि मोहि रघुबर कै दासी॥

(मानस, 2/258/4-5)

मन-क्रम-वचन से यदि मेरा प्रण सत्य है, श्रीराम के चरणों में मेरा मन अनुरक्त है तो '**भगवानु सकल उर बासी**'– जो घट-घट में वास करते हैं, वह भगवान मुझे राम की दासी बना दें। कृपानिधान राम ने उसी क्षण जान लिया कि अब यह मेरी शरण आ गयी है– '**तेहिं छन राम मध्य धनु तोरा। भरे भुवन धुनि घोर कठोरा॥**' *(1/260/8)*– उसी क्षण धनुष टूट गया, जयमाला पड़ गयी, सफलता मिल गयी। अर्थात् एक परमात्मा की शरण जिस क्षण सीता गयीं, सफलता मिल गयी। यही है गायत्री कि ओम् शब्द से उच्चरित 'भूः भुवः स्वः' तीनों लोकों में व्याप्त घट-घट वासी प्रभु मुझे राम की दासी बना दें। जिन्हें भी वह सत्य चाहिए, उन सबको एक प्रभु के प्रति समर्पण के साथ भजन करना चाहिए। यही है गायत्री!

9. *गायत्री मंत्र का अर्थ क्या है?*

गायत्री मंत्र का आशय अभी विस्तार से बताया गया। संक्षेप में यह उन प्रभु के प्रति समर्पण है जिससे त्रिगुणमयी प्रकृति से पार पाया जा सकता है।

10. *गायत्री मंत्र का वैज्ञानिक, तार्किक या दार्शनिक पक्ष क्या है? गायत्री मंत्र जपने से क्या लाभ है?*

गायत्री मंत्र एक परमात्मा के प्रति समर्पण मात्र है। इसका वैज्ञानिक, तार्किक या दार्शनिक होने प्रश्न ही नहीं है। गायत्री मंत्र से अनन्त देवी-देवताओं की पूजा से आपका सम्बन्ध हट जायेगा और एक परमात्मा में श्रद्धा जुट जायेगी, फिर जीवन में कभी भ्रान्ति नहीं होगी।– यही सर्वोपरि लाभ है।

11. *गायत्री मंत्र से किस कठिनाई को दूर किया जा सकता है?*

गायत्री मंत्र अर्थात् एक परमात्मा में समर्पण से सभी कठिनाइयाँ दूर हो जाती हैं, फिर जीवन में कभी कठिनाई आती ही नहीं किन्तु समर्पण के पश्चात् भजन करना होगा जिसकी विधि गीताभाष्य 'यथार्थ गीता' में द्रष्टव्य है। एक परमात्मा की शरण गायत्री है। संस्कृत भाषा में 'ॐ भूर्भुवः....' पढ़ा जाता है। हिन्दी में इसी को कहेंगे कि हे परमतत्त्व परमात्मा! हे घट-घट वासी प्रभु! मुझे अपनी शरण में ले लें। मैं आपको प्रत्यक्ष जानना चाहता हूँ। यह भावना ही गायत्री है। सही अर्थ न समझने से किसी ने गायत्री को देवी कहा, किसी ने मंत्र कहा, किसी ने कहा कि ब्राह्मण को ही गायत्री मंत्र जपने का अधिकार है जबकि इसके प्रणेता विश्वामित्र जी क्षत्रिय नरेश थे। जब उन्होंने ब्रह्मतत्त्व को जान लिया, तत्त्व विदित हो गया, उनमें वेद उतर आये, वह ब्राह्मण हो गये, भगवान को पा गये, फिर वह क्यों गायत्री जपें? जिसने ब्राह्मणत्व को न पाया हो ऐसा प्रत्येक प्राणी जप सकता है, भजन कर सकता है। यह सबके लिये है।

12. *गणेश पूजा क्या है? गणेश मंत्र क्या है?*

गणेश कोई मंत्र नहीं है। पौराणिक आख्यानों के अनुसार गणेश हिमाचल नरेश की कन्या पार्वती के पुत्र थे। पार्वती ने कठिन तपस्या के उपरान्त भगवान शिव को पतिरूप में प्राप्त किया। शिव-पार्वती कैलाश पर्वत पर निवास करते थे। एक बार माता पार्वती स्नान करने गयीं। अपने सेवकगणों को उन्होंने आदेश दिया कि भीतर कोई आने न पाये। उसी अवधि में भोलेनाथ शिव वहाँ पहुँच गये। नन्दी इत्यादि द्वारपालों ने उन्हें भीतर जाने दिया। पार्वती ने पूछा– क्या आपको यहाँ आने से किसी ने रोका नहीं? शंकर ने कहा– कह तो रहे थे किन्तु हमें रोकने का साहस किसमें है? पार्वती ने विचार किया कि इन सेवकों से आज्ञापालन की आशा व्यर्थ है। उन्होंने अपने उबटन से एक मानवाकृति का निर्माण किया, मंत्र पढ़ दिया, गणेश हो गये।

एक बार प्रश्न उठा कि इन तैंतीस करोड़ देवताओं में सर्वोपरि कौन है? मानक रखा गया कि जो पृथ्वी की परिक्रमा सबसे पहले कर ले वही सर्वोपरि है। सभी देवता अपने-अपने वाहनों पर सवार होकर पृथ्वी की परिक्रमा को निकल पड़े। देवराज ऐरावत पर निकल पड़े, कार्तिकेय मयूर पर चल पड़े। गणेश का वाहन चूहा था, वह भी चल पड़े। मार्ग में देवर्षि नारद खड़े थे। उन महापुरुष को देवताओं ने प्रथम आने की शीघ्रता में अनदेखा कर दिया था; लेकिन गणेश अपने वाहन से उतरे, उन्हें सादर प्रणाम किया। देवर्षि ने पूछा– गणेश! कहाँ चले? उन्होंने बताया– प्रतियोगिता में भाग ले रहा हूँ। नारद ने उपाय बताया– इतनी लम्बी दौड़ लगाने से क्या होगा, रामनाम लिखकर उसी की परिक्रमा कर लो! गणेश ने वही किया। क्रमशः सभी देवता आ गये और सर्वप्रथम गणेश को बैठा पाया। निर्णय हुआ कि पृथ्वी का चक्कर लगाने से क्या होगा; परमात्मा का नाम ही सत्य है। इसी का जप आरम्भ करें। मंत्र की परिपक्व अवस्था में जब नाम मात्र रह जाय, अन्य विकल्प शान्त हो जायँ तभी पृथ्वी की परिक्रमा पूर्ण होती है, फिर शरीररूपी पृथ्वी को पुनः धारण नहीं करना पड़ेगा। इसी नाम की परिक्रमा से गणेश सर्वोपरि और प्रथम पूज्य हुए–

महिमा जासु जान गनराऊ। प्रथम पूजिअत नाम प्रभाऊ।।

(रामचरितमानस, 1/18/4)

गणेश का तात्पर्य है शुभारम्भ! आरम्भ करे तो गणेश से। लेकिन आरम्भ करना है नामजप, वह भी भगवान का। भगवान के नाम की जो भी परिक्रमा पूर्ण कर ले वह गण अर्थात् सेवकों का नायक हो जायेगा; किन्तु यह जागृति सद्गुरु से होती है। नारद एक पूर्ण सद्गुरु थे।

गणेश नाम के अलग देवता की आकृति, वेशभूषा, शौर्य-पराक्रम की गाथाएँ पौराणिककाल की देन हैं। शौर्य और पराक्रम की भावना जनता में प्रोत्साहित करने के लिए गोस्वामी तुलसीदास जी ने काशी में कुश्ती, अखाड़े

और रामलीला की परम्परा को बल दिया। इसी प्रकार लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने महाराष्ट्र में गणपति पूजन को लोकोत्सव का रूप प्रदान किया। यह उस समय की परिस्थिति थी, समय की माँग थी। इसमें धर्म और अध्यात्म को रेखांकित करने का प्रयास भ्रान्तियों को बढ़ाना देना है। इसी तरह समाज में अनेक मत-मतान्तर प्रचलन में हैं जिनके सम्बन्ध में गोस्वामी तुलसीदास जी ने मानस में लिखा है–

कलिमल ग्रसे धर्म सब, लुप्त भये सदग्रन्थ।
दंभिन्ह निज मति कल्पि कर, प्रगट किये बहु पन्थ॥

(मानस, 7/97-क)

कलिमल ने धर्म को निगल लिया है, सद्ग्रन्थ लुप्त हो गये हैं। दम्भियों-पाखण्डियों ने बुद्धि से कल्पना करके बहुत से पंथ रच लिए; मत-मतान्तर बना लिए। ये अनेक पंथ, मत-मतान्तर क्या हैं? विनयपत्रिका के एक सौ तिहत्तरवें पद में तुलसीदास जी कहते हैं– **'बहु मत मुनि बहु पंथ पुराननि जहाँ-तहाँ झगरो सो। गुरु कह्यो राम-भजन नीको मोहिं लगत राज-डगरो सो॥'** पुराणों में बहुत से पंथों का वर्णन है, मत-मतान्तर मिलते हैं; सबमें आपसी झगड़े– गणेशपुराण में गणेश बड़े, शिवपुराण में शिव बड़े, विष्णुपुराण में विष्णु बड़े, देवीपुराण में देवी सर्वोपरि, पद्मपुराण में जैन-बौद्ध मत की निन्दा– **'जहाँ-तहाँ झगरो सो'–** ईर्ष्या-द्वेष से भरी पड़ी हैं पौराणिक गाथाएँ! **'गुरु कह्यो राम-भजन नीको मोहिं लगत राज-डगरो सो।'–** गुरु महाराज ने कहा– राम का भजन कर और यह हमें राजमार्ग जैसा लग रहा है। यह सर्वोपरि है, इसे करें। गणेश इत्यादि अनेकानेक वाह्य देवी-देवता पुराणों की देन हैं। एक प्रभु के प्रति समर्पित होकर, गुरु महाराज के आश्रित होकर नाम-जप आरम्भ करें, गणेश की तरह आपकी भी पूजा-परिक्रमा शुरू हो गयी और मंत्र की पूर्तिकाल में सुरत शब्द में समा गयी तो गणेश की ही तरह आपकी भी पूजा-परिक्रमा पूर्ण हो जायेगी।

13. *भगवान शिव के बारे में संक्षेप में बतायें।*

शिव आदि योगेश्वर थे। शिव से ही योग-साधना प्रारम्भ होने का इतिहास उपलब्ध होता है इसलिए उन्हें माता-पिताविहीन, स्वयंभू, स्वरूपस्थ, परमात्मस्वरूप इत्यादि विशेषणों से अलंकृत किया जाता है। उन्हें भूतनाथ (भूत माने जीवित प्राणी) भी कहा जाता है; क्योंकि वे प्राणिमात्र की शरणस्थली हैं। उनके शरण गये बिना कोई भगवान को प्राप्त नहीं कर सकता। शिव सद्गुरु थे।

आदि शंकराचार्य ने कहा– **'कः पूजनीयः शिवतत्त्वनिष्ठः।'** *(प्रश्नोत्तरी)*– सृष्टि में पूजनीय कौन है? जो शिवतत्त्व में स्थित है वह महापुरुष! जो प्रकृति की सीमाओं से उपराम है उसे शिव कहते हैं। ऐसा महापुरुष पूजनीय है। उनके गणों अर्थात् सेवकों की एक लम्बी परम्परा है उनमें गणेश भी हैं, कार्तिकेय हैं, समस्त प्राणी एवं देवता भी हैं।

14. *शिव शंभु मंत्र की उत्पत्ति कैसे हुई?*

भगवान के बहुत से नाम हैं। वह कैलाश पर्वत पर निवास करते थे इसलिए कैलाशपति कहलाये। शिव अर्थात् कल्याणस्वरूप। **'शं करोति सः शंकरः'**- परमकल्याण करते हैं इसलिए शंकर; **'शंका अरिः स शंकरः'**- शंकाओं का निवारण करनेवाले, शंकाओं से उपराम शंकर, शंभु- जो स्वयं अपने में परिपूर्ण हैं, त्रिपुरारी अर्थात् त्रिगुणमयी प्रकृति का अन्त करनेवाले, जो इसके परे हैं वह त्रिपुरारी हैं। वह भोलेनाथ लोक-व्यवहार से अनभिज्ञ, अपने में निमग्न रहनेवाले– यह तथा अन्य बहुत सारी विभूतियाँ भगवान शिव की हैं। सब उन्हीं के गुणानुवाद हैं, नाम हैं। अलग से कोई मंत्र नहीं है।

15. *शिव शंभु मंत्र का अर्थ बतायें।*

जो स्वयं अपने में परिपूर्ण हो, स्वरूपस्थ हो ऐसा महापुरुष!

16. *शिव शंभु मंत्र से किन कठिनाइयों को हल किया जा सकता है?*

शिव शंभु कोई मंत्र नहीं है। यह तो उनका नाम है। वह स्वयं में स्थित हैं, स्वयं कर्ता-धर्ता हैं इसलिए शंभु कहलाते हैं। शिव जो प्रकृति की सीमाओं से अतीत हैं। **'शंका अरिः स शंकरः'**– जो शंकाओं से अतीत हैं शंकर कहे जाते हैं। उनकी शरण जाने से समस्त कठिनाइयों का अन्त हो जाता है और मानव का कल्याण-पथ प्रशस्त हो जाता है।

जासु नाम बल संकर कासी। देत सबहि सम गति अबिनासी॥

(मानस, 4/9/4)

भगवन्नाम के बल से शंकर जी काशी में मरनेवालों को मुक्ति देते ही रहते हैं। **'कासी मरत जन्तु अवलोकी। जासु नाम बल करउँ बिसोकी॥** *(1/118/1)*– काशी में मरते हुए जीव को यदि मैं देख लेता हूँ तो हे पार्वती! उन परमप्रभु के नाम अर्थात् ओम् के बल से मैं उसे अविनाशी पद प्रदान कर देता हूँ। इसलिए शंकर जी की शरण जो कोई आया, जैसे– कागभुशुण्डि, उन सबको भगवान की भक्ति प्रदान कर दिया। पहले तो उन्हें श्राप दिया कि गुरु महाराज आये, तू बैठा रह गया! कागभुशुण्डि के गुरु महाराज ने बीच-बचाव किया कि इस गरीब का तो कोई दोष ही नहीं है–

तव माया बस जीव जड़, संतत फिरइ भुलान।

तेहि पर क्रोध न करिअ प्रभु, कृपा सिंधु भगवान॥

(मानस, 7/108 ग)

प्रभो! यह तो जीव है, जड़ है, आपकी माया से विवश होकर भूला भटक रहा है। जैसे आपकी माया ने नचाया, वैसे ही नाच रहा है बेचारा! जब आपकी कृपादृष्टि पड़ ही गयी है तो इसका परमकल्याण कर डालें। भगवान शिव ने कहा– यह दुष्ट इसी लायक था। गुरु महाराज की साधुता देख भगवान शिव ने उसे क्षमा किया, आशीर्वाद भी दिया–

पुरी प्रभाव अनुग्रह मोरें। राम भगति उपजिहि उर तोरें॥

(मानस, 7/108/10)

एक तो अवधपुरी में तुम्हारा जन्म हुआ उसका प्रभाव; मेरी सेवा की है उसके अनुग्रह से तुम्हारे हृदय में रामभक्ति का उदय होगा। उन्होंने मुक्ति नहीं दिया, राम की भक्ति दे दिया–

सिव सेवा कर फल सुत सोई। अबिरल भगति राम पद होई॥

(मानस, 7/105/2)

शिवसेवा का फल है भगवान राम की अविरल भक्ति, जो एक बार जागृत होने पर स्थिति प्राप्त कराकर ही दम लेती है। बीच में कोई रुकावट नहीं, कहीं व्यवधान नहीं।

बिनु छल विस्वनाथ पद नेहू। राम भगत कर लच्छन एहू॥

(मानस, 1/103/6)

बिना छल-कपट के विश्व के नाथ शिव के चरणों में प्रीति रामभक्त के लक्षण हैं। भक्ति करे शंकर जी की, पा जायें राम को! भोजन आप करें, पेट हमारा भर जाय! वास्तव में ऐसा ही है; क्योंकि शंकर आदि सद्गुरु थे, योगेश्वर थे।

जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी। सो न पाव मुनि भगति हमारी॥

(मानस, 1/137/7)

सत्, रज और तम– इन तीनों पुरों का अन्त करनेवाले त्रिपुरारी भोलेनाथ शिव जिस पर कृपा न करें कोई भगवान की भक्ति नहीं पा सकता, यह भगवान स्वयं कह रहे हैं। **'संकर भजन बिना नर, भगति न पावइ मोरि।'** *(7/45)* भगवान राम बार-बार इस पर बल दे रहे हैं कि भगवान शिव में समर्पण के बिना कोई भक्ति प्राप्त नहीं कर सकता।

साधना के आरम्भ में जब तक राम-नाम हृदय से जागृत नहीं हो जाता, तब तक हम-आप कोई भी नाम जप सकते हैं, उसके पश्चात् आपको ओम् या

राम ही चुनना होगा। आदिशास्त्र गीता में ओम् जपने का निर्देश है, वैदिक ऋषि भी ओम् जपते थे। ओ माने वह अविनाशी, अहं अर्थात् मैं स्वयं! वह भगवान जो आपके हृदय-देश में निवास करते हैं। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि उस हृदयस्थ ईश्वर की शरण जायँ।

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्।। *(गीता, 13/17)*

वह ईश्वर ज्योतियों का भी परम ज्योति, अंधकार से अत्यन्त परे, ज्ञानमय, जानने योग्य, **'ज्ञानगम्यं'**– ज्ञान द्वारा सबको सुलभ है। किन्तु वह रहता कहाँ है? **'हृदि सर्वस्य विष्ठितम्'**– वह सबके हृदय-देश में समाहित होकर निवास करता है।

त्रेतायुग में भक्तों में राम-नाम जप का प्रचलन बढ़ा यद्यपि सत्ययुग में भक्त प्रह्लाद ने राम-नाम का ही जप किया था। शिक्षाशास्त्र प्रतिबन्धित हो जाने से ओम् शब्द जपने के अधिकार-अनधिकार का विवाद देख संतों ने प्रभु के अनन्त नामों में से एक नाम राम का प्रयोग जप के लिए निर्देशित किया। जो सब के घट-घट में रमण करता है वह है राम! हृदय में रहता है या घट में– बात एक ही है। जो अर्थ राम का है वही ओम् का है, परिणाम में मिलनेवाला प्रभु भी एक है किन्तु आरम्भिक अवस्था में प्रभु का कोई भी नाम लिया जा सकता है। यह गुणानुवाद है, संकीर्तन है; किन्तु भक्ति की जागृति के लिए भगवान शिव की, सद्गुरु की शरण जाना होगा। शिव राम की भक्ति देते हैं और भक्ति द्वारा जो लक्ष्य प्राप्त किया जाता है उसका नाम है मुक्ति।

17. *भगवन्! हनुमान के विषय में कुछ बतायें। उनका धर्म में क्या स्थान है?*

वाल्मीकि रामायण, रामचरितमानस इत्यादि ग्रन्थों में महावीर हनुमान का विशद चरित्र उपलब्ध है। उनका जन्म त्रेतायुग में हुआ था। वह केशरी नामक वानर जातीय नरेश के पुत्र थे। भगवान शंकर के आशीर्वाद और

पवनदेव के सहयोग से उनका जन्म हुआ था। उनकी माँ का नाम अंजनी था। बाल्यकाल से ही वह भगवान शिव के कृपापात्र थे। प्रकारान्तर से वह शिव के ही अंश थे। पूर्वजन्म से उनकी साधना शिवतत्त्व तक थी। वह आजीवन अखण्ड ब्रह्मचारी और भगवान के अंतरंग सेवक थे। जो भी उनके सान्निध्य में आया उसे उन्होंने भगवान राम की सेवा में लगा दिया।

किष्किन्धा नरेश बालि के अनुज सुग्रीव के वह प्रधान सचिव थे। बालि ने उन्हें अपने राज्य से निष्कासित कर दिया था। सुग्रीव मारे-मारे फिर रहे थे। हनुमान ने उन्हें पुनः किष्किन्धा का राज्य दिलाया।

लंका में रावण के अनुज विभीषण की भी यही दशा थी। हनुमान से उन्होंने कहा कि वह लंका में वैसा ही जीवनयापन कर रहे हैं जैसे दाँतों के मध्य जिह्वा रहती है। क्या मेरे जैसे अधम पर भी भगवान कृपा करेंगे? हनुमान ने उन्हें प्रोत्साहन दिया–

कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सबहीं बिधि हीना॥
प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा॥
अस मैं अधम सखा सुनु, मोहू पर रघुबीर।
कीन्ही कृपा सुमिरि गुन, भरे बिलोचन नीर॥

(रामचरितमानस, 5/7)

हनुमान बोले– विभीषण जी! मैं ही कौन बड़ा कुलीन हूँ। मैं कपि हूँ, चंचल हूँ और हर प्रकार से हीन हूँ। प्रातः कोई हमारा नाम ले ले तो उसे दिनभर भोजन नसीब नहीं होगा। मैं इतना अधम हूँ फिर भी प्रभु ने मेरे ऊपर कृपा की है। आप तो राजकुल के हैं। चलें राम की शरण! उन्हें राम की शरण में भेज दिया, लंकेश बना दिया। लंकाधिराज रावण को भगवान के धाम भेज दिया। उनका सम्पूर्ण जीवन परमात्मा राम के प्रति समर्पण है। जो भी हनुमान की शरण में आया, उन्होंने उसे मुक्ति नहीं दी अपितु राम जी के चरणों में लगा दिया।

बड़भागी अंगद हनुमाना। चरण कमल चापत बिधि नाना।।

(रामचरितमानस, 6/10/7)

अंगद ने हनुमान का अनुसरण किया तो उन्होंने भी भगवान के चरण-कमलों की सेवा प्राप्त कर ली। मानस जिनके हृदय की उपज है उन भगवान शंकर का निर्णय है–

हनूमान सम नहिं बड़भागी। नहिं कोउ राम चरन अनुरागी।।

(रामचरितमानस, 7/49/8)

उन प्रभु के चरणों में अनुराग के कारण ही हनुमान भाग्यशाली कहे गये।

सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू।।

(रामचरितमानस, 1/25/6)

पावन राम नाम का स्मरण करके भगवान् श्रीराम को भी अपने वश में कर लिया।

सुनहु उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं बिषय अनुरागी।।

वे लोग अभागे हैं जो एक परमात्मा को छोड़कर विषयों में अनुरक्त होते हैं। हनुमान **'ज्ञानिनामग्रगण्यं'–** ज्ञानियों में अग्रगण्य थे।

हनुमान बन्दर थे। बन्दर मनुष्यों की प्रजाति थी न कि पशु! प्राचीन जातियों में पशु-पक्षियों के चिह्न राष्ट्रीय ध्वजों पर अंकित रहते थे। उदाहरण के लिए नाग क्षत्रियों की एक प्रजाति थी। नागकन्या से अर्जुन का विवाह हुआ था। ऋक्षराज जाम्बवान की कन्या से श्रीकृष्ण का विवाह हुआ था। समुद्रगुप्त ने नौ नागवंशीय राजाओं को परास्त किया था। इन राजाओं के मुकुट पर नाग अंकित रहता था। अस्तु नाग, मण्डूक, हैहय, गज, वानर, ऋक्ष इत्यादि प्राचीन भारत की मानव प्रजातियाँ थीं। इसी क्रम में हनुमान भी आपके सम्मानित पूर्वज थे।

18. *हनुमान चालीसा क्या है?*

चालीसा चालीस चौपाइयों की काव्य-प्रस्तुति है जो किसी की प्रशंसा में कही जाती है। किसी महापुरुष की वन्दना साठ पंक्तियों में होने से उसे साठा या साठिका कहते हैं। किसी प्रकरण को सौ पदों में कहने से उसे शतक कहा जाता है। हनुमान चालीसा हनुमान जी की जीवनी है, उनके व्यक्तित्व और कृतित्व का विवरण है कि उनका जन्म किससे हुआ, किस प्रकार उन्होंने सबको राम की शरण में भेज दिया, दीन-दुःखी व्यक्तियों को सुख और दुष्टों का अन्त किया। उनके ओज और भक्तिपूर्ण गौरवगाथा के इस गायन से हम सबमें शौर्य, पराक्रम और भगवद्भक्ति की लहर दौड़ जाती है। संतों के चरित्र से ही भक्ति का उदय होता है।

जो महापुरुष भगवान के स्वरूप को प्राप्त कर लेते हैं वह सूक्ष्म शरीर से सृष्टि में सदैव विराजमान रहते हैं। श्रद्धा से जो भी उनका स्मरण करता है वे आज भी उनका मार्गदर्शन करते हैं। इसीलिए शिव आज भी हैं, लीला-संवरण के पश्चात् गुरु महाराज (श्री परमहंस जी) आज भी हैं। उनका आशीर्वाद भली प्रकार मिलता है। वह आपको वर्तमान में जो महापुरुष हैं उनके पास पहुँचा देंगे, जिससे आपका भी पथ प्रशस्त होगा। उन महापुरुष का यशोगान है हनुमान चालीसा!

कालक्रम से चालीसा पाठों की परम्परा-सी बन गयी है। दुर्गा चालीसा, शिव चालीसा, गणेश चालीसा, नेता चालीसा तक लोग लिखते ही जा रहे हैं। चालीस चौपाई और उसके आरम्भ और अन्त में दो दोहा लिख दें, चालीसा बन गया। इन सभी चालीसाओं में हनुमान चालीसा सबसे प्राचीन कहा जाता है, हनुमान जी की तपस्या है, एक सन्त का गुणानुवाद है। इससे प्रभु में श्रद्धा जागृत होती है, सन्त-सेवा में मन लगता है और जब मन लग जाय तो भजन एक परमात्मा का, जो हनुमान ने किया, जिसकी समग्र विधि क्रमबद्ध रूप से 'यथार्थ गीता' में उल्लिखित है।

19. *ध्वनि क्या है? ध्वनि की शक्ति समझायें।*

वायुमण्डल में तरंगों की हलचल को ध्वनि कहा जाता है। तेज ध्वनि, मधुर ध्वनि, उच्चारण में उदात्त, अनुदात्त, स्वरित इत्यादि ध्वनियों के अनेकानेक भेद हैं। बहुत से लोग ध्वनियों के माध्यम से पशु-पक्षियों की पहचान कर लेते हैं। आजकल ध्वनि-प्रदूषण से शहर काँप रहे हैं। निवारण के लिए ध्वनिरोधक लगा रहे हैं, वृक्षारोपण कर रहे हैं; किन्तु अध्यात्म में इन ध्वनियों का कोई उपयोग नहीं है। अध्यात्म में जिस ध्वनि की बहुत बड़ी महिमा है वह भजन की जागृति के साथ है।

भगवान श्रीकृष्ण के अवतरण के पूर्व आकाशवाणी हुई, ''रे कंस! जिस देवी को तू ले जा रहा है इसका आठवाँ पुत्र तुम्हारा वध करेगा।'' इस ध्वनि से कुहराम मच गया। जनता भगवान की प्रतीक्षा करने लगी। कंस मौत से बचने की मोर्चाबन्दी करने लगा किन्तु लाखों प्रयास करने पर भी आकाशवाणी सत्य हुई। यह है ध्वनि जो परमात्माप्रदत्त होती है।

वनवासकाल में भगवान श्रीराम चित्रकूट में भार्या सीता और अनुज लक्ष्मण के साथ पर्णकुटी में निवास कर रहे थे। कोल-भीलों ने लक्ष्मण को बताया कि भरत एक बड़ी सेना लेकर आ रहे हैं। तमतमाये हुए लक्ष्मण श्रीराम के पास आये और कहा– लगता है वह आपको मारकर अपने राज्य को निष्कण्टक बनाने के षड्यन्त्र में आ रहे हैं; किन्तु चिन्ता की कोई बात नहीं है मैं अकेला ही उन सबको मारकर गिरा दूँगा। आपके चरणों की शपथ है, मैं उन्हें जीवित नहीं छोड़ूँगा। राम ने समझाया भी, किन्तु लक्ष्मण का आक्रोश कम नहीं हुआ। तब एक दूसरा प्रबन्ध हो गया, आकाशवाणी हुई–

जगु भय मगन गगन भइ बानी। लखन बाहुबल बिपुल बखानी।।

(रामचरितमानस, 2/230/1)

लक्ष्मण! आप निःसन्देह महान पराक्रमी हैं; किन्तु बिना सोचे-विचारे जल्दबाजी में कार्य कर पछताने वाले को कोई बुद्धिमान नहीं कहता। लक्ष्मण संकुचित हुए, राम ने समझा लिया। यह है ध्वनि!

हमारे गुरु महाराज का पूरा जीवन ही आकाशवाणियों से संचालित था। अध्यात्म के प्रत्येक पथिक का यही पाथेय है। इसके अनेकों माध्यम हैं। जब यह जागृत हो जाती है तो शून्य से, पृथ्वी से, उड़ते पक्षियों से, राह चलते व्यक्ति से, पेड़-पौधों से– सर्वत्र से भगवान बोल सकते हैं। विस्तार से जानने के लिए आश्रमीय प्रकाशन 'जीवनादर्श एवं आत्मानुभूति' देखें। इस ध्वनि का नाम है भजन की जागृति। किसी तत्त्वदर्शी महापुरुष के द्वारा यह जागृत होती है। एक बार जागृत हो जाने पर यह ध्वनि सेवक भक्त को सुरक्षा-संरक्षण प्रदान करते हुए, भजन पढ़ाते हुए, प्रकृति के खोह-खन्दकों से बचाते हुए ले चलती है। लक्ष्य परमात्मा को विदित कराकर ही यह शान्त होती है, मार्ग में कहीं कोई विराम नहीं!

सारांशतः आध्यात्मिक परिसर की यह ध्वनि भजन की जागृति है जो भगवान द्वारा तत्त्वदर्शी महापुरुष के सौजन्य से होती है। इसके द्वारा परमात्मा साधक का मार्गदर्शन करते हैं। इस ध्वनि का अमोघ प्रभाव होता है। संसार में उसका मार्ग रोकनेवाला कोई नहीं है, कोई उसे अन्यथा नहीं कर सकता। यही उसकी विशेष शक्ति है।

20. *जप क्यों करना चाहिए? जप का उचित समय, स्थान बतायें।*

जप भगवान का अक्षुण्ण सहयोग प्राप्त करने के लिए किया जाता है जिससे जीवन में कोई दुःख न हो। हताश व्यक्ति ही इसके औचित्य का प्रश्न उछालते हैं; जैसा चार्वाक दर्शन में है कि भगवान नहीं हैं। धृतराष्ट्र के पास इसी नीति का समर्थक कुणिक नामक मंत्री था। उसने कहा– राजन्! आपके पुत्रों की दीप्ति बुझती जा रही है जबकि वह संख्या में एक सौ हैं। आपके अनुज पाण्डुपुत्रों की कान्ति बढ़ रही है। आप प्रयत्नपूर्वक उनका उन्मूलन कर दें। उनके समक्ष आप संन्यासियों की भाषा बोलें कि संसार नश्वर है, मैं तो राज्य का त्याग कर अब भजन करूँगा। जब वैराग्य की वार्ता सुनकर वे आपके विश्वास में आ जायँ तो लाक्षागृह बनाकर उन्हें उसी में जला दें। कालनेमि ने

यही किया। प्रतापभानु का सर्वनाश कपटी मुनि ने किया। रावण ने यही किया। इस प्रवृत्ति के लोग अनादिकाल से हैं कि जप-तप पूजापाठ क्यों करें? आज भी इस मनोवृत्ति के लोग बहुसंख्यक हैं। किन्तु सन्त से तो भूल होती ही नहीं। जिनको भगवान का मार्गदर्शन उपलब्ध है वे भजन की महिमा जानते हैं। उनसे भगवान कभी भूल होने ही नहीं देते। पूज्य गुरु महाराज कहा करते थे कि मैं पतित होना चाहूँ तब भी भगवान मुझे ऐसा होने ही नहीं देंगे। भगवान ने हमें वहाँ ऐसे बचाया, ऐसा कहा...।

अतः एक परमात्मा का श्रद्धा के साथ सुमिरन करें। ओम्, राम या शिव किसी एक नाम का जप आरम्भ करें और संतों की सेवा से जिस दिन तत्त्वदर्शी महापुरुष आपको मिल जायेंगे तो जिसका नाम ध्वनि है, उनकी कृपा से जागृत हो जायेगी। इसके पश्चात् उनकी आज्ञा का पालन ही भजन है। जप के लिए कोई भी जगह अपवित्र नहीं है। खाना खाते, पानी पीते, शौच जाते, उठते-बैठते, सोते-जागते हर समय नाम याद आता रहे। जगने पर, आँख खुलने पर पहला संकल्प आये तो प्रभु के नाम का, कोई दृश्य आये तो गुरु महाराज का अथवा भगवान के स्वरूप का। नाम के प्रभाव से भजन जागृत हो जाता है–

साधक नाम जपहिं लय लाएँ। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाएँ।।

(रामचरितमानस, 1/214)

साधक लौ लगाकर नाम जपते हैं और अणिमादि सिद्धियाँ पा जाते हैं। नाम जप करते-करते स्तर उन्नत हो जाने पर भगवान बताते हैं कि सही क्या, गलत क्या! आपका मार्गदर्शन होने लगेगा। यह जागृति किसी तत्त्वदर्शी महापुरुष से ही होती है, अन्य कोई उपाय नहीं है।

गीता आपका धर्मशास्त्र है। यह अन्तर्राष्ट्रीय ग्रन्थ है। यह सृष्टि के आरम्भ से भगवान के श्रीमुख से प्रसारित है। लोगों के मस्तिष्क में धूमिल पड़ने लगी तो भगवान श्रीकृष्ण ने द्वापर में इस अविनाशी योग को श्रीमद्भगवद्गीता के रूप में पुनः प्रकाशित किया जिसे वेदव्यास जी ने लिपिबद्ध किया।

कालक्रम से पुनः बोधगम्य नहीं रह गयी तो इसी का यथावत् भाष्य 'यथार्थ गीता' भगवान के ही निर्देशों से प्रकाश में आ गयी है। इसे सर्वत्र प्रसारित करना चाहिए। इसकी सी.डी. भी है, अपने चैनल पर चलाना चाहिए। इससे आप सबकी समस्त शंकाओं का समाधान होता चला जायेगा। धर्म के सम्बन्ध में, मनुष्य का दायित्व क्या है?– सारी शंकाओं का समाधान इस गीता से हो जायेगा। श्रद्धापूर्वक इस 'यथार्थ गीता' के अनुशीलन से भगवत्पथ पर चलने और उस पर दृढ़ रहने की क्षमता का भी आपमें आविर्भाव हो जायेगा।

॥ बोलिये सद्गुरुदेव भगवान की जय! ॥

'श्रीमद्भगवद्गीता' की साधना

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः।। (१३/२२)

वह पुरुष **'उपद्रष्टा'**– हृदय-देश में बहुत ही समीप, हाथ-पाँव-मन जितना आपके समीप है उससे भी अधिक समीप द्रष्टा के रूप में स्थित है। उसके प्रकाश में आप भला करें, बुरा करें, उसे कोई प्रयोजन नहीं है। वह साक्षी के रूप में खड़ा है। साधना का सही क्रम पकड़ में आने पर पथिक कुछ ऊपर उठा, उसकी ओर बढ़ा तो द्रष्टा पुरुष का क्रम बदल जाता है, वह **'अनुमन्ता'**– अनुमति प्रदान करने लगता है, अनुभव देने लगता है। साधना द्वारा और समीप पहुँचने पर वही पुरुष **'भर्ता'** बनकर भरण-पोषण करने लगता है, जिसमें आपके योगक्षेम की भी व्यवस्था कर देता है। साधना और सूक्ष्म होने पर वही **'भोक्ता'** हो जाता है। **'भोक्तारं यज्ञ तपसाम्'**– यज्ञ, तप जो कुछ भी बन पड़ता है, सबको वह पुरुष ग्रहण करता है। और जब ग्रहण कर लेता है, उसके बाद वाली अवस्था में **'महेश्वरः'**– महान् ईश्वर के रूप में परिणत हो जाता है। वह प्रकृति का स्वामी बन जाता है; किन्तु अभी कहीं प्रकृति जीवित है तभी उसका मालिक है। इससे भी उन्नत अवस्था में वही पुरुष **'परमात्मेति चाप्युक्तो'**– जब परम से संयुक्त हो जाता है, तब परमात्मा कहलाता है। इस प्रकार शरीर में रहते हुए भी यह पुरुष आत्मा **'परः'** ही है, सर्वथा इस प्रकृति से परे ही है। अन्तर इतना ही है कि आरम्भ में यह द्रष्टा के रूप में था, क्रमशः उत्थान होते-होते परम का स्पर्श कर परमात्मा के रूप में परिणत हो जाता है।

– 'श्रीमद्भगवद्गीता' भाष्य 'यथार्थ गीता' से साभार

श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्दजी आश्रम ट्रस्ट

न्यू अपोलो एस्टेट, गाला नं 5, मोगरा लेन (रेलवे सबवे के पास)
अंधेरी (पूर्व), मुम्बई – 400069 फोन - (022) 28255300
ई-मेल - contact@yatharthgeeta.com वेबसाइट - www.yatharthgeeta.com